

१६. पवित्रहृदयबालकस्य कथा ।

बालो विलोक्यते यादृक्तादृशं वदति ध्रुवम् । नत्वा जिनं प्रवक्ष्यामि तत्कथां बुद्धये नृणाम् ॥१॥
 कौशाम्बीनगरे राजा जयपालो विचक्षणः । श्रेष्ठी सागरदत्ताख्यो धनाढ्यो धर्मवत्सलः ॥२॥
 भार्या सागरदत्ताभूतयोः पुत्रो बभूव च । नाम्ना समुद्रदत्तोसौ रूपलावण्यमण्डितः ॥३॥
 तत्रैव नगरे जातो गोपायनवणिक्कुधीः । सप्तव्यसनसंसक्तः पापतो धनवर्जितः ॥४॥
 तस्य सोमाभवद्भार्या तयोः पुत्रश्च सोमकः । संजातो वत्सरैः कैश्चित्क्रमेण प्रौढबालकः ॥५॥
 तौ द्वौ स्वलीलया बालौ बालक्रीडां परस्परम् । नित्यं समुद्रदत्ताख्य-सोमकौ कुरुतः स्म च ॥६॥
 एकदा धनलोभेन पापी गोपायनो वणिक् । बालं समुद्रदत्ताख्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥७॥
 पश्यतः सोमकस्याग्रे मारयित्वा स्वगेहके । गृहीत्वाभरणान्याशु गर्तायां क्षिप्तवान्कुधीः ॥८॥
 तदा सागरदत्ताद्यैस्तत्कुटुम्बैः सुदुःखितैः । कष्टतोपि न दृष्टोसौ पुण्यहीने यथा सुखम् ॥९॥

१६. पवित्र हृदय वाले एक बालक की कथा

बालक जैसा देखता है, वैसा ही कह भी देता है क्योंकि उसका हृदय पवित्र रहता है। यहाँ मैं जिनभगवान् को नमस्कार कर एक ऐसी ही कथा लिखता हूँ, जिसे पढ़कर सर्व साधारण का ध्यान पापकर्मों के छोड़ने की ओर जाये ॥१॥

कौशाम्बी में जयपाल नाम के राजा हो गए हैं। उनके समय में वहीं एक सेठ हुआ है। उसका नाम समुद्रदत्त था और उसकी स्त्री का नाम समुद्रदत्ता। उसके एक पुत्र हुआ। उसका नाम सागरदत्त था। वह बहुत ही सुन्दर था। उसे देखकर सबका चित्त उसे खिलाने के लिए व्यग्र हो उठता था। समुद्रदत्त का एक गोपायन नाम का पड़ोसी था। पूर्वजन्म के पापकर्म के उदय से वह दरिद्री हुआ। इसलिए धन की लालसा ने उसे व्यसनी बना दिया। उसकी स्त्री का नाम सोमा था। उसके भी एक सोमक नाम का पुत्र था। वह धीरे-धीरे कुछ बड़ा हुआ और अपनी मीठी और तोतली बोली से माता पिता को आनन्दित करने लगा ॥२-५॥

एक दिन गोपायन के घर पर सागरदत्त और सोमक अपना बालसुलभ खेल खेल रहे थे। सागरदत्त इस समय गहना पहने हुए था। उसी समय पापी गोपायन आ गया। सागरदत्त को देखकर उसके हृदय में पाप वासना हुई दरवाजा बन्द कर वह कुछ लोभ के बहाने सागरदत्त को घर के भीतर लिवा ले गया। उसी के साथ सोमक भी दौड़ा गया। भीतर ले जाकर पापी गोपायन ने उस अबोध बालक का बड़ी निर्दयता से छुरी द्वारा गला काट दिया और उसका सब गहना उतारकर उसे गड्ढे में गाड़ दिया ॥६-८॥

कई दिनों तक बराबर कोशिश करते रहने पर भी जब सागरदत्त के माता-पिता को अपने बच्चे का कुछ हाल नहीं मिला, तब उन्होंने जान लिया कि किसी पापी ने उसे धन के लोभ से मार

ततः पुत्रमपश्यन्ती सती सागरदत्तिका। स्व रे समुद्रदत्तोसौ सोमकं प्रति संजगौ ॥१०॥
 सोमकः प्राह बालत्वाद् गर्त्तायां तव पुत्रकः। तिष्ठतीति न वेत्त्येव बालकः किञ्चिदप्यहो ॥११॥
 पापी पापं करोत्येव प्रच्छन्नपि पापतः। तत्प्रसिद्धं भवत्येव कष्टकोटिप्रदायकम् ॥१२॥
 तत्र सागरदत्ता सा मृतं पुत्रं विलोक्य तम्। भर्तुः सागरदत्तस्य जगौ वार्ता सुदुःखदाम् ॥१३॥
 तेनोक्तं यमदण्डाख्य-कोट्टपालस्य तेन च। भूपतेस्तेन कोपेन चक्रे तन्नृगृहं भृशम् ॥१४॥
 इति ज्ञात्वा बुधैर्नित्यं त्यक्त्वा पापं सुदुःखदम्। धर्मः श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तः सेवनीयः सुखप्रदः ॥१५॥

डाला है। उन्हें अपने प्रिय बच्चे की मृत्यु से जो दुःख हुआ उसे वे ही पाठक अनुभव कर सकते हैं जिन पर कभी ऐसा प्रसंग आया हो। आखिर बेचारे अपना मन मसोस कर रहे गए। इसके सिवा वे और करते भी तो क्या? ॥९॥

कुछ दिन बीतने पर एक दिन सोमक समुद्रदत्त के घर के आँगन में खेल रहा था। तब समुद्रदत्ता के मन में न जाने क्या बुद्धि उत्पन्न हुई सो उसने सोमक को बड़े प्यारे से अपने पास बुलाकर उससे पूछा-भैया, बतला तो तेरा साथी सागरदत्त कहाँ गया है? तूने उसे देखा है?

सोमक बालक था और साथ ही बालस्वभाव के अनुसार पवित्र हृदयी था। इसलिए उसने झट से कह दिया कि वह तो मेरे घर में एक गड्ढे में गड़ा हुआ है। बेचारी समुद्रदत्ता अपने बच्चे की दुर्दशा सुनते ही धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी। इतने में समुद्रदत्त भी वहीं आ पहुँचा। उसने उसे होश में लाकर उसके मूर्च्छित हो जाने का कारण पूछा। समुद्रदत्त ने सोमक का कहा हाल उसे सुना दिया। समुद्रदत्त ने उसी समय दौड़े जाकर यह खबर पुलिस को दी। पुलिस ने आकर मृत बच्चे की लाश सहित गोपायन को गिरफ्तार किया, मुकदमा राजा के पास पहुँचा। उन्होंने गोपायन के कर्म के अनुसार उसे फाँसी की सजा दी। बहुत ठीक कहा है-पापी लोग बहुत छुपकर भी पाप करते हैं, पर वह नहीं छुपता और प्रकट हो ही जाता है और परिणाम में अनन्त काल तक संसार के दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए सुख चाहने वाले पुरुषों को हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पाप, जो कि दुःख देने वाले हैं, छोड़कर सुख देने वाला दयाधर्म, जिनधर्म ग्रहण करना उचित है ॥१०-१५॥

बालपने में विशेष ज्ञान नहीं होता, इसलिए बालक अपना हिताहित नहीं जान पाता, युवावस्था में कुछ ज्ञान का विकास होता है, पर काम उसे अपने हित की ओर नहीं फटकने देता और वृद्धावस्था में इन्द्रियाँ जर्जर हो जाती है, किसी काम के करने में उत्साह नहीं रहता और न शक्ति ही रहती है। इसके सिवा और जो अवस्थाएँ हैं, उनमें कुटुम्ब परिवार के पालन-पोषण का भार सिर पर रहने के कारण सदा अनेक प्रकार की चिन्ताएँ घेरे रहती हैं कभी स्वस्थचित्त होने ही नहीं पाता, इसलिए तब भी आत्महित का कुछ साधन प्राप्त नहीं होता। आखिर होता यह है कि जैसे पैदा हुए, वैसे ही चल बसते हैं। अत्यन्त कठिनता से प्राप्त हुई मनुष्य पर्याय को समुद्र में रत्न फेंक देने की

बालो वेत्ति हिताहितं न विकलो लोकेत्र कामातुर-
स्तारुण्ये गतयौवने च नितरां प्राणी जरापीडितः।
मध्यस्थोपि कुटुम्बदुर्भरतृषाक्रान्तः कदा स्वस्थता
दैवात्प्राप्य जिनेन्द्रशासनमसौ भव्योस्तु धर्माशयः ॥१६॥
इति कथाकोशे पवित्रहृदयबालकस्य कथा समाप्ता।

१७. धनदत्तराज्ञः कथा

नत्वा श्रीमज्जिनाधीशं सुराधीशैः समर्चितम्। धनदत्तमहीभर्तुः सत्कथां कथयाम्यहम् ॥१॥
अन्धदेशेऽत्र विख्याते धान्यादिकनकेपुरे। धनदत्ताभिधो राजा सदृष्टिर्धर्मवत्सलः ॥२॥
संघश्रीवन्दकस्तस्य मंत्री मिथ्यामताश्रितः। एवं राज्यं करोति स्म धर्मकर्मपरो नृपः ॥३॥
एकदा धनदत्ताख्या-संघश्रीभ्यां स्वलीलया। ताभ्यां मंत्रप्रकुर्वद्भ्यां प्रासादस्योपरि क्षितौ ॥४॥
कालेऽपराणहके तत्र समालोक्य नभस्तले। मुनीन्द्रौ चारणौ चित्ते चमत्कारविधायिनौ ॥५॥
ससम्भ्रमं समुत्थाय कृत्वा तद्वन्दनां मुदा। स्वान्तिके तौ समानीतौ साधुसङ्गः सतां प्रियः ॥६॥
तदा तस्य महीभर्तुर्वचनेन विचक्षणौ। श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्म-व्याख्यानं संविधाय तौ ॥७॥

तरह गँवा बैठते हैं और प्राप्त करते हैं वही एक संसार भ्रमण। जिसमें अनन्त काल ठोकें खाते-खाते बीत गए। पर ऐसा करना उचित नहीं किन्तु प्रत्येक जीवमात्र को अपने आत्महित की ओर ध्यान देना परमावश्यक है। उन्हें सुख प्रदान करने वाला जिनधर्म ग्रहण कर शान्तिलाभ करना चाहिए ॥१६॥

१७. धनदत्त राजा की कथा

देवादि के द्वारा पूज्य और अनन्तज्ञान, दर्शनादि आत्मीयश्री से विभूषित जिनभगवान् को नमस्कार कर मैं धनदत्त राजा की पवित्र कथा लिखता हूँ ॥१॥

अन्धदेशान्तर्गत कनकपुर नामक एक प्रसिद्ध और मनोहर शहर था। उसके राजा थे धनदत्त। वे सम्यग्दृष्टि थे, गुणवान् थे और धर्मप्रेमी थे। राजमंत्री का नाम श्रीवन्दक था। वह बौद्ध धर्मानुयायी था परन्तु तब भी राजा अपने मंत्री की सहायता से राजकार्य अच्छा चलाते थे। उन्हें किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती थी ॥२-३॥

एक दिन राजा और मंत्री राजमहल के ऊपर बैठे हुए कुछ राज्य सम्बन्धी विचार कर रहे थे कि राजा को आकाशमार्ग से जाते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों के दर्शन हुए। राजा ने हर्ष के साथ उठकर मुनिराज को बड़े विनय से नमस्कार किया और अपने महल में उनका आह्वान किया। ठीक भी है 'साधुसंगः सतां प्रियः' अर्थात्-साधुओं की संगति सज्जनों को बहुत प्रीतिकर जान पड़ती है ॥४-६॥

इसके बाद राजा के प्रार्थना करने पर मुनिराज ने उसे धर्मोपदेश दिया और चलते समय वे श्रीवन्दक मंत्री को अपने साथ लिवा ले गए। ले जाकर उन्होंने उसे समझाया और आत्महित की इच्छा